Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 3 | ISSN : 2582-0095

गंगा यमुना दोआब क्षेत्र में संधृत फसलोत्पादन हेतु फसल साहचर्य : एक भौगोलिक विश्लेषण

आर0 एस0 चन्देल
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग, कमला नेहरु स्नातकोत्तर महाविद्यालय तेजगाँव, रायबरेली, उ0 प्र0

Article Info
Volume 3 Issue 3
Page Number : 169-186

Publication Issue :
May-June-2020

Article History
Accepted : 20 June 2020
Published : 30 June 2020

शोधसार - भारत एक ग्राम्य–कृषि प्रधान देश है, जहाँ परम्परायें, सामाजिक रीति–रिवाज, धर्म, गरीबी, बेरोजगारी, कुपोषण आदि उसकी पहचान है। जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो कृषि विकास निम्नतर स्तर पर था, अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर थी किन्तु कुल कृषि उत्पादन कम होता था, क्योंकि प्रति एकड़ उत्पादन अन्य देशों की तुलना में बहुत कम था, जनसंख्या विस्फोट सबसे विकराल समस्या थी। इन समस्याओं के समाधान हेतु सन् 1950 में नियोजित विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएं लागू की गयी, जिसमें कृषि विकास को एक महत्वपूर्ण अंग माना गया। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के तहत वैज्ञानिक कृषि का विकास देश के समस्त कृषि क्षेत्रों पर एक समान नही हुआ, जिससे वैज्ञानिक एवं प्राविधिकी ज्ञान में सम्पन्न क्षेत्र विकसित तथा इनके अल्प प्रयोग वाले क्षेत्र अल्प विकसित क्षेत्रों के रुप में बट गये। विकसित क्षेत्रों में वैज्ञानिक कृषि का निरन्तर प्रचार–प्रसार होता गया, जिससे कृषि उत्पादन, कृषि विशिष्टीकरण एवं बाजारोन्मुख कृषि का विकास हुआ। विकसित क्षेत्रों में आधुनिक तकनीकी पर आधारित पूंजीवादी कृषि व्यवस्था विकसित हुयी। जबकि अन्य क्षेत्रों में अद्यतन जनसंख्या वृद्धि एवं अवैज्ञानिक तथा पारम्परिक कृषि के कारण कृषि विकास की गति मन्द रही। इन क्षेत्रों में कृषि उत्पादन जीवन निर्वाहक बनकर ही रह गयी। इस प्रकार देश के विभिन्न क्षेत्रों में कृषि व्यवसाय एवं स्तर में अत्यधिक विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। कुछ दशकों से अविकसित कृषि क्षेत्रों में वैज्ञानिक कृषि विकास का प्रयास अवश्य हो रहा है, परन्तु इन क्षेत्रों में उच्च उत्पादकता वाले बीजों, रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशक दवाओं, उन्नत सिंचाई व्यवस्था, मशीनीकरण तथा अन्य उन्नत कृषि आगतों का विवेकपूर्ण उपयोग न होने के कारण जहाँ एक तरफ कृषि में वांछित लाभ प्राप्त नही हो रहा है। वहीं दूसरी तरफ इसके अविवेकपूर्ण उपयोग से विभिन्न प्रकार की कृषि पारिस्थितिकीय समस्यायें भी विकराल रुप धारण करती जा रही हैं, जिससे विभिन्न क्षेत्रों में या तो कृषि उत्पादकता स्थिर होती जा रही है या तो कृषि उत्पादकता में गिरावट दृष्टिगोचर हो रहा है, जिसे देखते हुए कृषि वैज्ञानिकों ने फसल साहचर्य एवं फसल विविधीकरण को अपनाने जैसी नीति को प्रस्तावित किया है।

वर्षा की अनिश्चितता, सिंचाई साधनों की कमी तथा प्राचीन रुढ़िवादी कृषि पद्धति आदि के फलस्वरुप फसलों में भिन्नता व विविधता पायी जाती थी जिससे बहुसंख्य कृषक अपनी आवश्यकताओं के अनुरुप कुछ प्रमुख फसलों की खेती न करके एक से अधिक फसलों को उत्पादित करना पसन्द करते थे। वर्तमान समय में समतल मैदानी क्षेत्रों में जहाँ सघन जनसंख्या पायी जाती है, वहाँ खाद्यान्न उपादन करने हेतु फसलों की संख्या कम पायी जाती है वहीं कम वर्षा एवं कम उपजाऊ ऊबड़—खाबड़ क्षेत्रों में स्थानिक विशेषताओं के अनुरुप फसलों की संख्या अधिक हो जाती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि फसलों के निर्धारण में जहाँ एक तरफ प्राकृतिक कारक यथा धरातलीय बनावट व प्रवाह प्रणाली, मृदा प्रकार व उर्वरा शक्ति का स्तर, वर्षा की मात्रा आदि अपनी अहम भूमिका निभाते हैं, वहीं सामाजिक—सांस्कृतिक कारकों यथा जनसंख्या, सिंचाई के साधनों की सघनता व सुलभता, परम्परायें, भोजन की आदतें, परिवहन सुविधाएं बाजार की समीपता, कृषि अवस्थापनात्मक तत्व आदि का भी स्पष्ट रुप से प्रभाव देखा जा सकता है। है। इसी सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए अध्ययन हेतु गंगा—यमुना दोआब क्षेत्र (जनपद फतेहपुर,उ0 प्र0) को चयनित किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्‌देश्य गंगा—यमुना दोआब क्षेत्र (जनपद फतेहपुर,उ0 प्र0) में संधृत फसलोंत्पादन हेतु फसल साहचर्य का मापन कर संधृत सुझाव प्रस्तुत करना है। वास्तव में किसी भी क्षेत्र में संधृत फसलोंत्पादन वहाँ पाये जाने वाले फसल साहचर्य एवं फसल गहनता पर निर्भर करता है।

शीर्ष शब्द :—फसलोंत्पादन, परम्परागत फसलें, दोआब, मशीनीकरण, कृषि पारिस्थितिकीय, फसल साहचर्य, खसरा, जीन्सवार, कृषि अनुषंगीय व्यवसाय, विचलन विधि, क्रान्तिक मान।

प्रस्तावना - कृषि न सिर्फ भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, वरन् मानव बसाव तथा सामाजिक—सांस्कृतिक स्वरुप की भी आधारशिला है। संक्षेप में समग्र भारतीय जीवन कृषि से अनुप्राणित है। देश में अनुकूल भौगोलिक दशाओं के कारण प्राचीन काल से ही कृषि प्रमुख आर्थिक कार्य एवं अर्थतंत्र की आधार शिला रही है। कुछ दशकों से अविकसित कृषि क्षेत्रों में वैज्ञानिक कृषि विकास का प्रयास अवश्य हो रहा है, परन्तु इन क्षेत्रों में उच्च उत्पादकता वाले बीजों, रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशक दवाओं, उन्नत सिंचाई व्यवस्था, मशीनीकरण तथा अन्य उन्नत कृषि आगतों का विवेकपूर्ण उपयोग न होने के कारण जहाँ एक तरफ कृषि में वांछित लाभ प्राप्त नही हो रहा है। वहीं दूसरी तरफ इसके अविवेकपूर्ण उपयोग से विभिन्न प्रकार की कृषि पारिस्थितिकीय समस्यायें भी विकराल रुप धारण करती जा रही हैं, जिससे विभिन्न क्षेत्रों में या तो कृषि उत्पादकता स्थिर होती जा रही है या तो कृषि उत्पादकता में गिरावट दृष्टिगोचर हो रहा है।

किसी प्रदेश के फसलों के क्षेत्रीय वितरण से बने प्रारुप को फसल प्रारुप कहते हैं, (*सिंह, बी0 बी0, 1979*)। अध्ययन क्षेत्र में किसी एक फसल का उत्पादन नही होता है बल्कि विभिन्न क्षेत्रों व खेतों में विभिन्न फसलों की कृषि मौसम अनुरुप की जाती है। इस प्रकार फसल प्रारुप का तात्पर्य किसी समय बिन्दु पर विभिन्न फसलों के अधीन कृषि भूमि के हिस्से से है, जिसमें समय के साथ—साथ फसल प्रारुप में परिवर्तन होता रहता है। मृदा, वर्षा, तापमान, सूर्यातप प्राप्ति की अवधि, पवन की गति एवं दिशा आदि प्राकृतिक कारकों के साथ—साथ लोगों की खाद्य आदतें, आर्थिक स्थिति, तकनीकी प्रगति, संस्थानात्मक सम्बन्ध, व्यवस्थागत कारक, सरकारी नीतियाँ आदि मानवीय कारक फसल प्रारुप एवं ग्रामीण विकास निर्धारण में अहम भूमिका निभाते हैं। अतः फसल प्रारुप इन कारकों के सम्मिलित प्रभावों का द्योतक है। फसल प्रारुप की अवधारणा फसलों के न केवल क्षेत्रीय वितरण वरन् इसके कालिक क्रम से भी सम्बन्धित होती है। एक ओर जहाँ इसके अन्तर्गत विभिन्न फसलों के विभिन्न प्रारुप

होते हैं तो दूसरी ओर कृषक द्वारा अपनायें गये फसल की चक्रीय स्थिति भी इससे प्रदर्शित होती है। समाज की मांग के अनुरुप समय–समय पर फसल प्रारुप में परिवर्तन होता रहता है। अतः फसल प्रारुप का कालिक अनुक्रमण भी क्षेत्र के कृषि विकास को समझानें में सहायक है। एक दिये गये कृष्य जलवायु दशा में कई प्रकार की फसलें उगायी जा सकती है, और कृषक उसमें से किन–किन फसलों को उगाता है यह प्राकृतिक व सामाजार्थिक कारकों पर निर्भर रहता है। कृषक उन्ही फसलों को चुनता है, जो अधिक उत्पादन और अधिकतम लाभ प्रदान करें। सामान्य रुप से कृषक परम्परागत फसलें अपने खेतों में बोता है, क्योंकि नई किस्म की फसलों की कृषि करने की शक्ति उसमें सीमित होती है। इस प्रकार फसल प्रारुप स्थानिक परिस्थितियों का प्रतिफल होता है।

अध्ययन का उद्देश्य एवं विधितन्त्र

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य गंगा–यमुना दोआब क्षेत्र (जनपद फतेहपुर,उ0 प्र0) में संधृत फसलोंत्पादन हेतु फसल साहचर्य का मापन कर संधृत सुझाव प्रस्तुत करना है। वास्तव में किसी भी क्षेत्र के संधृत फसलोंत्पादन वहाँ पाये जाने वाले फसल साहचर्य एवं फसल गहनता पर निर्भर करता है। इसकी प्राप्ति हेतु क्षेत्रीय स्तर पर कृषिगत संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग एवं अवस्थापनात्मक तत्वों का नवसृजन व विकेन्द्रीकरण तथा कृषि विकास प्रक्रियाओं का समुचित संचालन एवं अंगीकरण आवश्यक है। शोध विषय वस्तु से सम्बन्धित चयनित अध्ययन क्षेत्र जनपद फतेहपुर का विकासखण्ड स्तरीय अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है। फसल साहचर्य से सम्बन्धित विविध तथ्यों का न सिर्फ स्थानिक अपितु कालिक वितरण प्रारुप को विश्लेषित करने के लिए विगत साढे तीन दशकों के आंकड़ों एवं सूचनाओं का एकत्रीकरण दो वर्षों यथा 1990–91 एवं 2015–16 पर किया गया है।

उद्देश्यों के औचित्य के परख हेतु आंकड़ों एवं सूचनाओं का एकत्रीकरण शोध का प्रथम कार्य होता है। चूंकि शोध क्षेत्र का आकार वृहद् एवं प्रकृति समस्यापरक है। इसलिए तथ्यों की अधिक शुद्धता अभीष्ट हो, इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखकर आंकड़ों एवं सूचनाओं का एकत्रीकरण प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों द्वारा किया गया है। प्राथमिक आंकड़ों एवं सूचनाओं का संग्रह यादृच्छिक आधार पर प्रतिचयनित किये गये ग्रामों के कृषकों से व्यक्तिगत सम्पर्क, निरीक्षण, साक्षात्कार तथा प्रश्नावली द्वारा किया गया है। जबकि द्वितीयक सूचनाए एवं आंकडे विभिन्न विभागों (फतेहपुर) से संकलित किया गया है। भूमि उपयोग व फसल प्रतिरुप सम्बन्धी सूचनाओं एवं आंकड़ों का संग्रह मिलान खसरा एवं जीन्सवार (जनपद राजस्व विभाग, सम्बन्धित तहसील तथा राजस्व निदेशालय, उ0 प्र0, लखनऊ) द्वारा संग्रहीत किया गया है। फसल साहचर्य के अद्यतन प्रवृत्तियों की पहचान हेतु प्रतिचयनित ग्रामों के खसरा (सम्बन्धित तहसील), प्रश्नावली एवं अनुसूचियों द्वारा ग्रामीणों से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करके संकलित किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र का भौगोलिक व्यक्तित्व

अध्ययन क्षेत्र (जनपद फतेहपुर) गंगा–यमुना दोआब क्षेत्र में स्थित एवं विस्तृत है, जिसकी स्थिति एवं विस्तार 25° 26′ से 26° 14′ उत्तरी अक्षांश तथा 18° 13′ से 81° 21′ पूर्वी देशान्तर के मध्य है। प्रशासनिक दृष्टि से जनपद फतेहपुर के अन्तर्गत 3 तहसीलें यथा खागा, बिन्दकी एवं फतेहपुर, 13 विकासखण्ड (असोथर, तेलियानी , बहुवा, भिटौरा, हसवा, अमौली, खजुहा, देवमई, मलवां, धाता, ऐराय, विजयीपुर तथा हथगांम), 1516 राजस्व गाँव, 132 न्याय पंचायतें, 789 ग्राम पंचायतें, 2 नगर पालिका (फतेहपुर एवं बिन्दकी) तथा 4 नगर पंचायतें (खागा, बहुवा, किशुनपुर एवं जहानाबाद) समाहित है। जनपद का कुल क्षेत्रफल 4843.75 वर्ग किमी. है, जिसमें 2632733 (2011) लोग निवास करते हैं।

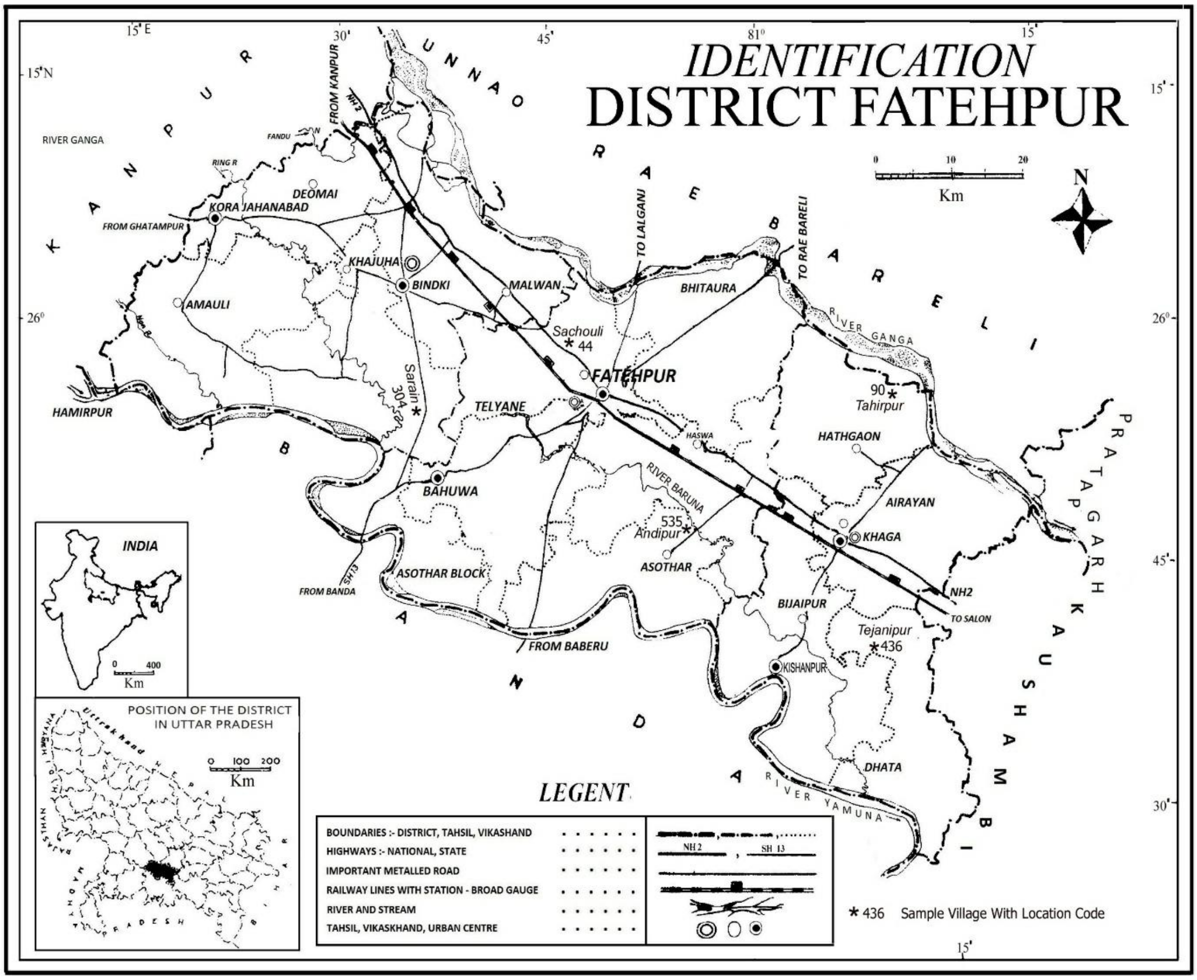

मानचित्र –1

अध्ययन क्षेत्र गंगा–यमुना के दोआब में स्थित है, जिसका अधिकांश धरातलीय भाग समतल है जबकि नदियों के किनारे धरातल ऊबड़–खाबड़ तथा रेतीली व कंकरीली है। जनपद में अनेकों नदियां, नाले एवं अवनलिकाएं प्रवाहित होकर गंगा व यमुना नदी में विलीन हो जाती है। जनपद का उत्तरी सम्भाग का जल गंगा तथा दक्षिणी सम्भाग का जल यमुना में विलीन हो जाता है। जलवायु की दृष्टि से यह क्षेत्र मानसूनी विशेषता वाला है। अध्ययन क्षेत्र में सामान्यतः जीविकोनिर्वाहन कृषि की जाती है। अध्ययन क्षेत्र के कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल का लगभग 74 प्रतिशत भाग कृषि के अन्तर्गत समाहित है जिस पर विविध फसलों यथा धान, गेंहूँ चना, मसूर, मटर, एवं अन्य मोटे अनाज जैसी फसलों की विशेषीकृत एवं विविधीकृत दोनों ही प्रकार की कृषि स्थानीय भौगोलिक दशाओं के अनुसार की जाती है, साथ ही साथ कृषि अनुषंगीय व्यवसायों में पशु पालन, मुर्गी पालन, सुअर पालन आदि भी कहीं–कहीं व्यावसायिक स्तर पर सम्पादित किया जाता है।

फसल साहचर्य

किसी भी इकाई क्षेत्र में वर्ष पर्यन्त कई प्रकार की फसलें ली जाती है, जिनका क्षेत्रीय विस्तार तथा कोटि गुणांक अलग–अलग होता है। फसल कदाचित ही पूर्णतया एकाकी रुप से ली जाती है, क्योंकि फसल प्रारुप, वितरण, उत्पादन आदि न केवल उस इकाई क्षेत्र के भौगोलिक कारकों के प्रभाव को प्रतिबिम्बित करती है, वरन् कृषि भूमि उपयोग की दिशा व दशा को भी प्रदर्शित करती है, जिसकी सहायता से तथ्य परक कृषि प्रदेशों का निर्धारण किया जा सकता है। फसल प्रारुप, वितरण

एवं उत्पादन को भौतिक तत्वों के साथ ही साथ मानवीय तत्व भी प्रभावित करते हैं, जिनमें जनसंख्या का स्थानान्तरण एवं मानव की बढ़ती हुई आवश्यकताएं प्रमुख है। इसे स्पष्ट करते हुए *अहमद सिद्दकी* (1967) ने लिखा है कि "किसी भी क्षेत्र का फसल साहचर्य प्रारुप वास्तव में आकस्मात नही होता, बल्कि वहाँ के भौतिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण की देन होता है।" इसलिए किसी इकाई क्षेत्र में एक विशिष्ट फसल और उसी के साथ ही साथ अनेक गौड़ फसलें पैदा की जाती है। कृषक अपने आवश्यकतानुसार मुख्य फसल के साथ–साथ कोई न कोई खाद्यान्न, दलहन, तिलहन व रेशेदार फसल प्रथम वरीयताक्रम में है तो उसके साथ कृषक कोई न कोई अखाद्य फसल भी उत्पन्न करता है। इस प्रकार किसी क्षेत्र या प्रदेश में उत्पन्न की जाने वाली प्रमुख एवं गौड़ फसलों के समूह को फसल साहचर्य कहते हैं।

फसल साहचर्य न केवल फसलों के समूह में किसी एक फसल की श्रेणी को स्पष्ट करती है, वरन् फसल समूह में विभिन्न फसलों के क्षेत्रीय विस्तार एवं उनके गुणों को भी प्रदर्शित करता है। फसल साहचर्य के महत्व कों स्पष्ट करते हुए *जेम्स एवं जोन्स* (1954) ने लिखा है कि "फसल साहचर्य सम्बन्धी अध्ययन के अभाव में कृषि के क्षेत्रीय विशेषताओं को ठीक से समझा नही जा सकता है।" इसलिए कृषि प्रादेशीकरण के अध्ययन में फसल प्रारुप के प्रादेशिक अध्ययन के साथ ही फसल साहचर्य का अध्ययन महत्वपूर्ण होता है। इससे कृषि की क्षेत्रीय विशेषताओं को आसानी से समझा जा सकता है। अतः फसल साहचर्य प्रदेश का निर्धारण उन फसलों के स्थानिक वर्चस्व के आधार पर किया जा सकता है, जिनमें क्षेत्रीय सह–सम्बन्ध पाया जाता है तथा जो मौसमी परिवर्तन के साथ–साथ वर्ष पर्यन्त विभिन्न रुपों में उगाई जाती है। इसलिए वर्तमान समय में कृषि भूगोल के अन्तर्गत फसल साहचर्य या फसल समिश्रण या फसल साहचर्य सम्बन्धी अध्ययन कृषि भूगोलविदों के लिए एक आवश्यक विषय बन गया।

फसल साहचर्य की संकल्पना एवं मापन विधियाँ

फसल साहचर्य प्रदेश के निर्धारण के लिए फसलों के वितरण एवं स्वरुप का अध्ययन आवश्यक है। इसी को ध्यान में रखते हुए प्रारम्भ में भूगोलवेत्ता स्वेच्छा से फसलों के महत्व के आधार पर वर्गीकृत कर लेते थे, कि अमुख फसल वरीयता क्रम में प्रथम या द्वितीय है, लेकिन इस प्रकार का वर्गीकरण सत्यता से बहुत दूर था। बाद में कुछ रुप–भेदों को मापकर फसलों के क्रम वरीयता को आंका गया लेकिन यह आंकन भी अनुमानित था वास्तविक नही। इसलिए फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र के वास्तविक प्रतिशत को आधार मानकर फसलों के क्षेत्रीय वरीयताक्रम के निर्धारण का प्रयास सर्वप्रथम *जे0 सी0 वीवर* (1954) महोदय ने फसल साहचर्य हेतु मात्रात्मक सूत्र का प्रतिपादन कर कृषि भूगोल में हलचल मचा दिया। *वीवर* महोदय ने फसल साहचर्य हेतु सर्वप्रथम फसलों के स्वरुप, उसके क्षेत्रीय विस्तार तथा कोटि के आधार पर फसल साहचर्य फसल प्रदेशों का निर्धारण किया। इसके पश्चात अधिकृत तथा सैद्धान्तिक प्रतिशत का अन्तर निकालकर तथा सभी को जोड़कर उतनी ही फसलों की संख्या से भाग दिया। *वीवर* महोदय का उद्देश्य प्रमाणिक विचलन विधि द्वारा विचलन की वास्तविक मात्रा ज्ञात न होकर विचलन की सापेक्षिक क्रम ज्ञात करना था। *वीवर* महोदय द्वारा प्रतिपादित फसल साहचर्य विधि की आलोचनाएं विभिन्न तथ्यों के आधार पर हुई। लेकिन आलोचनाओं के बावजूद यह फसल साहचर्य माडल उपादेयता एवं उपयोगिता की दृष्टि से नींव का पत्थर रहा, क्योंकि बाद के सभी कृषि भूगोलविदों ने इन्हीं के माडल को परिमार्जित कर फसल साहचर्य का निर्धारण करने का प्रयास किया। इसी क्रम में *के0 दोई* (1959) ने *वीवर* की विधि में संसोधन करते हुए वीवर के प्रसरण सूत्र $\Sigma d^2/n$ के स्थान पर अन्तरों के वर्ग के योग (Σd^2) का प्रयोग किया। *दोई* ने अपने सूत्र के आधार पर फसल साहचर्य की गणना हेतु एक सरल क्रान्तिक मान सारणी तैयार किया, जिसमें प्रत्येक साहचर्य के लिए सैद्धान्तिक एवं वास्तविक प्रतिशत क्षेत्रफलों के अन्तर का वर्ग निकालना

नही पड़ता। क्रान्तिक मान सारणी के अनुसार फसल साहचर्य के प्रतिशत के योग के सन्दर्भ में साहचर्य की अगली फसल के लिए क्रान्तिक मान दिया होता है। यदि अगली फसल का प्रतिशत क्षेत्रफल उस क्रान्तिक मान से अधिक है तो उसे साहचर्य मान में सम्मिलित किया जायेगा अन्यथा नहीं।

पी0 स्काट (1957) ने तस्मानिया के फसल साहचर्य प्रदेश को निर्धारित करते समय *वीवर* विधि के परिमार्जित सूत्र को अपनाया। इन्होने प्रमुख फसलों के साथ अन्य फसलों एवं पशुपालन को साहचर्य में स्थान दिया। *जानसन* (1958) महोदय ने फसलों के सापेक्षिक महत्व के आधार पर पूर्वी पाकिस्तान (बांग्लादेश) को फसल साहचर्य प्रदेशों में विभाजित करने के लिए सामान्य क्रम स्थापन मापक (Simple Scale of Gradiation) को अपनाया।

डी0 थामस (1963) महोदय ने भी *वीवर* महोदय के विचलन विधि में संसोधन कर फसल साहचर्य हेतु दो मुख्य फसलों के अन्तर की गणना के स्थान पर प्रत्येक फसल साहचर्य में सभी फसलों के लिए वास्तविक एवं सैद्धान्तिक प्रतिशत के अन्तर के आधार पर गणना किया। इन्होने दो अतिरिक्त फसलों की गणना शून्य से विचलन के आधार पर की और स्पष्ट किया कि जब दो फसल साहचर्य में प्रत्येक फसल के अन्तर्गत 50 प्रतिशत क्षेत्र है तो शेष फसलों के लिए शून्य प्रतिशत की कल्पना की जा सकती है। *जे0 क्रोस्टोविकी* महोदय ने फसलों के गुणात्मक एवं मात्रात्मक पक्षों को भी साहचर्य में सम्मिलित करने का सुझाव दिया। इस प्रविधि में विभिन्न फसलों की उसके समूहों में वर्गीकृत करने के पश्चात उसके मध्य अनुपात का परीक्षण किया जाता है तथा "क्रमिक लब्धांक प्रविधि" का उपयोग कर फसल साहचर्य क्षेत्र का निर्धारण किया जाता है और साहचर्य में प्रमुख फसल को सर्वप्रथम सम्मिलित किया जाता है। तत्पश्चात फसलों के कोटिक्रम के अनुसार अन्य फसलों को उनकी प्रमुखता के आधार पर सहायक फसल के रुप में सम्मिलित किया जाता है।

भारतीय कृषि भूगोलविद्ों में सर्वप्रथम *बनर्जी* (1964) ने पश्चिम बंगाल के फसल साहचर्य निर्धारण हेतु *वीवर विधि* में अल्प संसोधन कर एक फसल साहचर्य हेतु 80 प्रतिशत भाग को माना। परन्तु 80 प्रतिशत भाग पर बोया गया फसल वाला क्षेत्र एक फसली क्षेत्र होगा, इस सन्दर्भ में कोई स्पष्टीकरण नही दिया। इसी तरह *ए0 पी0 अय्यर* (1969) ने फसल साहचर्य निर्धारण हेतु सर्वाधिक दूरी प्रविधि (Maximum Distance Method) को अपनाया। जबकि *रफी उल्ला* (1965) नें अधिकतम सकारात्मक विचलन विधि (Maximum Positive Deviation Method) को अपनाया है।

इसी प्रकार भारत में अनेक विद्वानों नें अपनें–अपनें अध्ययन क्षेत्र में *वीवर, दोई, पी0 स्काट, जानसन, डी0 थामस, क्रोस्टोविकी, बनर्जी, अय्यर,* तथा *रफी उल्ला* आदि की विधियों का प्रयोग किया, जिनमें *हरपाल सिंह* (1965) का पंजाब का मैदान, *पी0 दयाल* (1967) का पंजाब का मैदान, *राय* (1967) का गंगा–घाघरा दोआब, *अहमद एवं सिद्दकी* (1967) का लूनी बेसिन, *त्रिपाठी तथा अग्रवाल* (1968) का निचला गंगा दोआब, मण्डल (1969) का पूर्वी उत्तर प्रदेश, *चौहान* (1971) का यमुना हिण्डन प्रदेश, *शर्मा* (1972) का उत्तर प्रदेश, *नित्यानन्द* (1972) का राजस्थान, *हुसैन* (1972) का उत्तर प्रदेश, *सक्सेना* (1972) का छत्तीसगढ बेसिन, *अली मोहम्मद* (1978) का उत्तर प्रदेश, *बी0 बी0 सिंह* (1979) का बड़ौत, *वी0 आर0 सिंह एवं आर0 एस0 चन्देल* (1991) का बुन्देलखण्ड क्षेत्र, *तिवारी एवं सिंह* (1994) का देवरिया, *कमलेश* (1996) का विलासपुर सम्भाग आदि के अध्ययन महत्वपूर्ण है।

प्रस्तुत अध्ययन में फसल साहचर्य प्रदेशों के निर्धारण हेतु विकासखण्ड स्तर पर 1990–91 एवं 2015–16 के फसल भूमि उपयोग सम्बन्धी आँकड़ों का प्रयोग किया गया है। विकासखण्ड स्तर पर विभिन्न फसलों का प्रतिशत सकल कृषित भूमि के आधार पर प्राप्त विवरणों को आरोही क्रम में व्यवस्थित कर *दोई* प्रविधि के क्रान्तिक मान के आधार पर फसल साहचर्य का निर्धारण किया गया।

सारणी : 1 फसल साहचर्य हेतु क्रान्तिक मान

तत्वों की श्रेणी	उच्च कोटि वाले तत्वों के प्रतिशतों का योग			
	50	**55**	**66**	**74**
1	0.00	5.53	20.00	—
2	0.00	2.69	9.67	15.58
3	0.00	1.73	6.07	10.00
4	0.00	1.29	4.51	7.35
5	0.00	1.04	3.54	5.51

Source: Doi, K. (1957) Industrial Structure of Japanese Prefecture, Proceeding I.G.U. Regional Conference, p. 85.

उपरोक्त सारणी में *दोई* महोदय द्वारा प्रतिपादित क्रान्तिक मान पर आधारित अध्ययन क्षेत्र जनपद फतेहपुर के फसल साहचर्य का आंकलन एवं विश्लेषण किया है। उदाहरण स्वरुप असोथर विकासखण्ड के फसलों को फसल साहचर्य हेतु लिया गया है। फसलों के संकेतांक के साथ–साथ तत्सम्बन्धी प्रतिशत भी वरीयताक्रम यथा गेहूँ (W 30.12 प्रतिशत), चना (G 21.50 प्रतिशत), धान (P 12.75 प्रतिशत), ज्वार–अरहर (Ja 11.09 प्रतिशत), बाजरा–अरहर (Ba 10.22 प्रतिशत), बेझड़ (Be 9.90 प्रतिशत), आदि दिया गया है।

दोई महोदय के अनुसार सर्वप्रथम उन्ही फसलों को साहचर्य में सम्मिलित करते हैं, जिनका प्रतिशत योग 50 से कम है, क्योंकि 50 प्रतिशत तक सभी तत्वों की श्रेणी का क्रान्तिक मान शून्य होता हैं। अतः 50 प्रतिशत या अधिक प्रतिशत मान रखने वाला फसली क्षेत्र एकल फसल साहचर्य के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। यदि फसलों की प्रतिशत मान 50 प्रतिशत से कम होता है तो क्रमशः फसल साहचर्य में परिवर्तन देखा जा सकता है। अध्ययन क्षेत्र के विकासखण्ड असोथर में इसी प्रकार की स्थिति पायी जाती है। विकासखण्ड असोथर में प्रथम फसल गेहूँ (W) का प्रतिशत मान 30.12 प्रतिशत है। इसलिए दूसरी फसल के रुप में चना (G) लिया जायेगा, जिसका प्रतिशत योग 51.72 प्रतिशत (30.12 + 21.60) है, जबकि 55 प्रतिशत वाले स्तम्भ में तीसरे तत्व का क्रान्तिक मान 2.69 है।

जबकि तीसरे फसल धान (P) का प्रतिशत मान 12.75 है, जो क्रान्तिक मान 2.69 मान से अधिक है इसलिए तीसरे फसल को भी साहचर्य में सम्मिलित किया जायेगा। तीनों फसलों का (WGP) प्रतिशत योग (30.10 + 21.60 + 12.75) 64.47 है, जो क्रान्तिक मान 66 प्रतिशत वाले स्तम्भ के लगभग बराबर है। अतः इस स्तम्भ के चौथे तत्व का मूल्य (6.07) अध्ययन क्षेत्र में पाये जाने वाले चौथी फसल ज्वार–अरहर (Ja) के प्रतिशत मूल्य (11.09) से कम है। अतः इसे भी साहचर्य में सम्मिलित करेगें। पुनः इन चारों फसलों का योग करने पर स्पष्ट होता कि कुल प्रतिशत मान (30.12 + 21.60 + 12.75 + 11.09) 74. 56 है जो क्रान्तिक मान 74 प्रतिशत वाले स्तम्भ के लगभग बराबर है। जबकि पाँचवें तत्व का मूल्य (7.3) अध्ययन क्षेत्र मे पाये जाने वाले पाँचवे फसल बाजरा–अरहर (Ba) के प्रतिशत मूल्य से कम (10.25) है, इसलिए बाजरा–अरहर को भी साहचर्य में सम्मिलित करने के उपरान्त पाँचों फसल का प्रतिशत योग (30.12 + 21.60 + 11.06 + 10.22) 84.78 प्रतिशत आता है, जिसकी

तुलना 74 प्रतिशत वाले स्तम्भ के छठें तत्व से करेगे, जिसका क्रान्तिक मान 5.51 है। जो छठें फसल मूल्य से कम है। अतः इसे भी फसल साहचर्य में सम्मिलित किया जायेगा। इस प्रकार असोथर विकासखण्ड में छः फसलों (W,G,P,Ja,Be,Wg) का फसल साहचर्य पाया जाता है। इसी प्रविधि के अनुसार शेष अन्य सभी विकासखण्डों का फसल साहचर्य वर्ष 1990–91 एवं 2015–16 का किया गया है। विश्लेषणोपरान्त स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में दो फसल साहचर्य से लेकर छः फसल साहचर्य पाया जाता है। जिसका विस्तृत विवरण सारणी 2 एवं मानचित्र 2 में दिया गया है।

सारणी : 2 फसल साहचर्य प्रारुप

फसल साहचय	विकासखण्ड					
	1990-91			**2015-16**		
	संख्या	**क्षे0 (हे0)**	**प्रति0**	**संख्या**	**क्षे0 (हे0)**	**प्रति0**
दो फसली साहचय	–	–	–	3	77566	26.41
तीन फसली साहचय	2	46462	15.40	2	45358	15.44
चार फसली साहचय	4	86749	28.76	3	48757	16.61
पांच फसली साहचय	5	117992	39.12	2	36108	12.29
छः फसली साहचय	2	50439	16.72	3	85906	29.25
योग	**13**	**301642**	**100.00**	**13**	**293695**	**100.00**

अध्ययन क्षेत्र में समाहित 13 विकासखण्डों के फसल साहचर्य का विश्लेषण करनें से स्पष्ट होता है कि विभिन्न विकासखण्डों में 2 से 6 फसल साहचर्य प्रारुप पाया जाता है। अधिकांश विकासखण्डों में गेंहूँ प्रथम फसल के रुप में है, जबकि द्वितीय फसल धान है, क्योंकि हरित क्रान्ति के बाद फसलोत्पादन में इन्ही दो फसलों का वर्चस्व सम्पूर्ण गंगा के मैदान में रहा है। जबकि इन फसलों के सहयोगी फसलों के रुप में कहीं चना, बेझड़ तो कहीं ज्वार–बाजरा का साहचर्य पाया जाता है। सामान्यतः दो फसली एवं तीन फसली फसल साहचर्य उन विकासखण्डों में पाया जाता है जहाँ समतल उपजाऊ मैदान, सघन सिंचाई एवं अन्य कृषि अवस्थापनात्मक तत्व पाया जाता है। जबकि तीन से अधिक फसलों का साहचर्य उन विकासखण्डों में पाया जाता है, जहाँ धरातल असमतल व बीहड़ीकृत है एवं सिंचाई के साधनों का अभाव पाया जाता है।

यदि अध्ययन क्षेत्र के कालिक परिवर्तन पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होता है कि जहाँ वर्ष 1990-91 में फसल विविधीकरण का स्तर उच्च यानि चार से छः फसलों का साहचर्य पाया जाता था, जिसमें वर्षा पर आधारित धान की फसल मैदानी क्षेत्रों में प्रथम फसल के रुप में तथा ऊबड़–खबड़ क्षेत्रों में ज्वार–अरहर फसल प्रथम फसल के रुप में बोयी जाती थी, जबकि सहयोगी फसलों के रुप में बेझड़, बाजरा, चना, ज्वार–उर्द, चारा आदि फसलों की कृषि की जाती थी। वहीं वर्ष 2015–16 में कृषि अवस्थापनात्मक तत्वों के विकास, वितरण, एवं अंगीकरण के कारण फसल विविधता के स्तर में गिरावट दर्ज किया गया। यानि अध्ययन क्षेत्र के अधिकांश विकासखण्डों में दो से चार फसलों का साहचर्य पाया जाने लगा है, जिसमें प्रथम फसल के रुप में गेहूँ तथा द्वितीय फसल के रुप में धान पाया जाता है। जबकि सहयोगी फसल के रुप में चना, ज्वार, बाजरा, ज्वार–अरहर, चारा, तिलहन आदि बोया जाने लगा है।

फसल साहचर्य प्रदेश

सामान्यतः किसी देश, प्रदेश एवं क्षेत्र में फसल साहचर्य प्रारुप पर भौतिक कारकों के साथ–साथ बदलते आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक दशाओं का प्रभाव प्रादेशिक एवं स्थानिक स्तर पर पड़ता, जिससे कहीं पर एकल तो कहीं पर दो से अधिक फसलों का साहचर्य पाया जाता है। इसी प्रकार अध्ययन क्षेत्र में भी दो से छः फसलों का साहचर्य पाया जाता है, जिसका विस्तृत वितरण निम्नलिखित है :

दो फसली साहचर्य प्रदेश

दो फसली फसल साहचर्य प्रतिरुप सामान्यतः उन विकासखण्डों में पाया जाता है, जहाँ समतल उपजाऊ मैदान व सघन सिंचाई के साथ–साथ उच्च सांस्कृतिक विकास पाया जाता है। यदि अध्ययन क्षेत्र के फसल साहचर्य के कालिक व क्षेत्रीय परिवर्तन (सारणी 2 व मानचित्र 2) पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होता है जहाँ वर्ष 1990–91 में फसल विविधता का स्वरुप उच्च होने के कारण दो फसली फसल साहचर्य के अन्तर्गत एक भी विकासखण्ड सम्मिलित नही थे, वहीं वर्ष 2015–16 में उच्च कृषि विकास के कारण कृषि विशेषीकरण का स्तर क्रमशः उच्च होने से इस वर्ग के अन्तर्गत 3 विकासखण्ड (77566 हेक्टेयर) यथा तेलियानी (W.P.), भिटौरा (W.P.), एवं मलवां (W.P.) सम्मिलित हो गये। इन विकासखण्डों की अवस्थित सामान्यतः समतल मैदानी क्षेत्रों में होने के कारण सिंचाई सघनता उच्च (80 प्रतिशत से अधिक) होने से कृषि अवस्थापनात्मक तत्वों का अंगीकरण भी उच्च हुआ है। सामान्यतः इन विकासखण्डों में प्रथम फसल के रुप में गेहूँ तथा द्वितीय फसल के रुप में धान का साहचर्य पाया जाता है।

तीन फसली साहचर्य प्रदेश

इस वर्ग के अन्तर्गत वे विकासखण्ड आते है जो नगर से दूर स्थित होने के साथ ही साथ अपेक्षतया सिंचाई सघनता का स्तर व कृषि अवस्थापनात्मक तत्वों की उपलब्धता मध्यम स्तर की पायी जाती है। तीन फसली फसल साहचर्य के कालिक व क्षेत्रीय परिवर्तन (सारणी 2 व मानचित्र 2) पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होता है कि वर्ष 1990–91 एवं 2015–16 में क्रमश दो–दो विकासखण्ड इस वर्ग में समिलित थे, लेकिन उनकी स्थिति भिन्नता लिए हुए है। वर्ष 1990–91 में तेलियानी एवं हथगांम विकासखण्डों (46462 हेक्टेयर) में धान, गेंहूँ तथा ज्वार–अरहर का साहचर्य पाया जाता था। वहीं वर्ष 2015–16 में तीन फसली फसल साहचर्य की अवस्थिति परिवर्तित होकर मध्य क्षेत्र में अवस्थित विकासखण्ड (45358 हेक्टेयर) बहुवा एवं हसवा में हो गया। जहाँ विगत वर्षों में चार (WPBeG) एवं पाँच (P.W.Be.Ja.G) फसल साहचर्य पाया जाता था। यदि विकासीय प्रक्रिया इसी प्रकार रही तो आने वाले समयों में कृषि विविधता का स्तर गिरेगा तथा कृषि विशेषीकरण का स्तर उच्च होगा।

चार फसली साहचर्य प्रदेश

चार फसली फसल साहचर्य उन विकासखण्डों में पाया जाता है, जहाँ प्राकृतिक तथा समाजार्थिक तत्वों की प्रतिबन्धित दशाएं पायी जाती है। इन विकासखण्डों में कृषक जीविकोंनिर्वाहक कृषि करते है, जिससे स्थली एवं मौसमी दशाओं के अनुसार फसलों की संख्या अधिक हो जाती है। यदि अध्ययन क्षेत्र में फसल साहचर्य के कालिक परिर्वतन पर दृष्टिपात करें तो जहाँ वर्ष 1990–91 में इस वर्ग के अन्तर्गत चार विकासखण्ड (86749 हेक्टेयर) यथा बहुवा (W,P,Be,G), भिटौरा (P,W,Ja,Be), मलवां (W,Be,P, Ja), एवं ऐराय (W,P,Be,Ja) सम्मिलित थे। वहीं कृषि अवस्थापनात्मक तत्वों के विकास, वितरण व अंगीकरण के कारण 2015–16 में विकासखण्डों (48757 हेक्टेयर) की संख्या घटकर तीन यथा देवमई (W,P,G,Ch), विजयीपुर

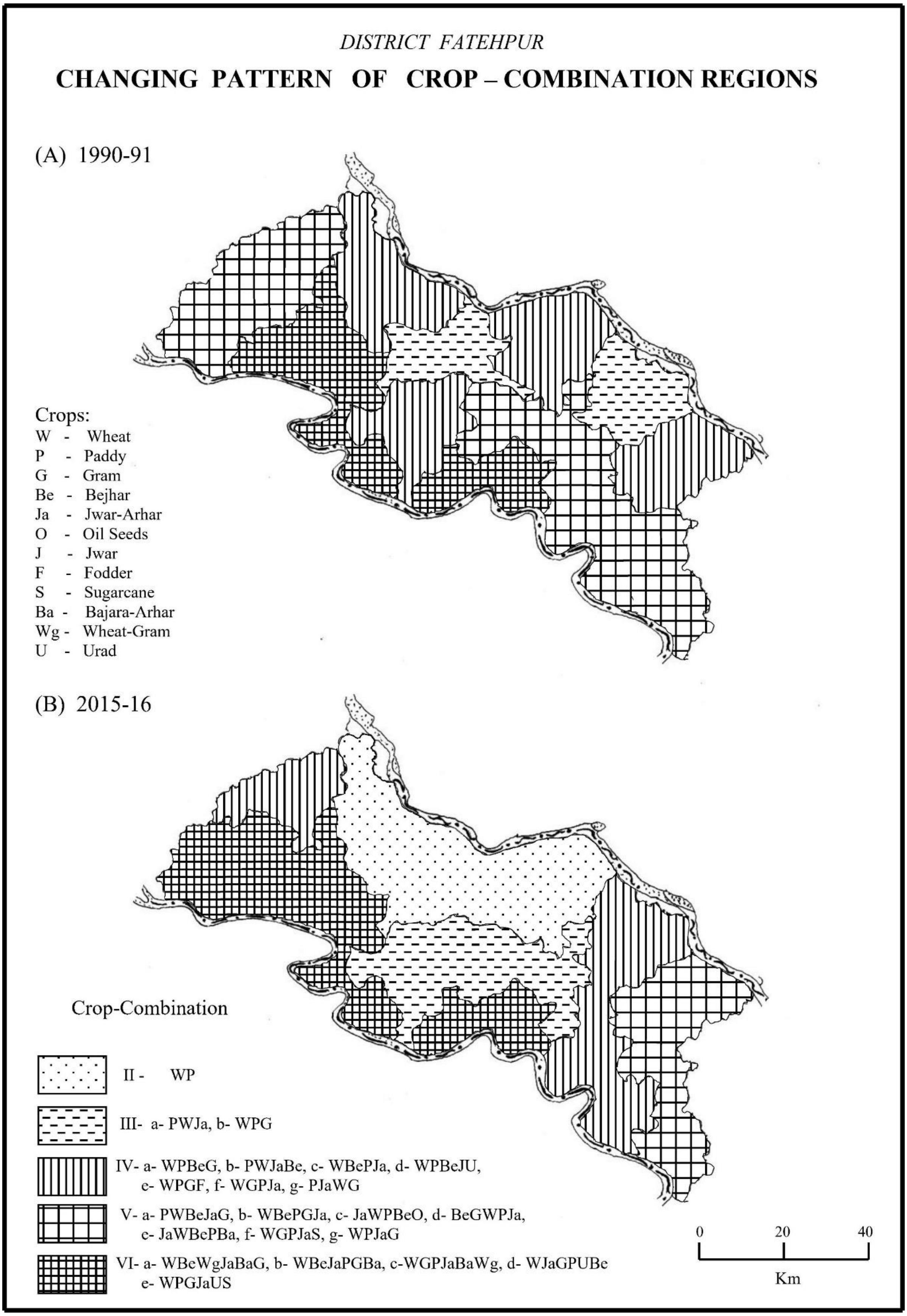
DISTRICT FATEHPUR
CHANGING PATTERN OF CROP – COMBINATION REGIONS
(A) 1990-91
Crops:
W - Wheat
P - Paddy
G - Gram
Be - Bejhar
Ja - Jwar-Arhar
O - Oil Seeds
J - Jwar
F - Fodder
S - Sugarcane
Ba - Bajara-Arhar
Wg - Wheat-Gram
U - Urad
(B) 2015-16
Crop-Combination
II - WP
III- a- PWJa, b- WPG
IV- a- WPBeG, b- PWJaBe, c- WBePJa, d- WPBeJU, e- WPGF, f- WGPJa, g- PJaWG
V- a- PWBeJaG, b- WBePGJa, c- JaWPBeO, d- BeGWPJa, e- JaWBePBa, f- WGPJaS, g- WPJaG
VI- a- WBeWgJaBaG, b- WBeJaPGBa, c-WGPJaBaWg, d- WJaGPUBe e- WPGJaUS
0 20 40
Km

मानचित्र –2

(W,G,P,Ja), एवं हथगांम (P,Ja,W,J), रह गया। सामान्यतः देवमई (Ja,W,P,Be,O) एवं विजयीपुर (Ja,W,,Be,P,Ba) ऐसे विकासखण्ड हैं, जहाँ वर्ष 1990–91 में पाँच फसल साहचर्य तथा हथगांम में तीन फसल साहचर्य (P,W,Ja) पाया जाता है। लेकिन अवस्थापनात्मक तत्वों के विकास व अंगीकरण के कारण फसलों की संख्या कम होती जा रही है।

पाँच फसली साहचर्य प्रदेश

इस वर्ग के अन्तर्गत आनें वाले विकासखण्डों की अवस्थित सामान्यतः अध्ययन क्षेत्र के विकास ध्रू (नगर फतेहपुर) से दूरस्थ क्षेत्रों में पायी जाती है। यदि कालिक एवं क्षेत्रीय परिवर्तन पर दृष्टिपात करें तो जहाँ वर्ष 1990–91 में विकासखण्डों (117992 हेक्टेयर) की संख्या पाँच यथा हसवा (P,W,Be,Ja,G), अमौली (W,Be,P,G,Ja), धाता (Be,G,W,P,Ja), विजयीपुर (Ja,W,Be,P,Ba), एवं देवमई (Ja,W,P,Be,O) थी। वहीं वर्ष 2015–16 में जनसंख्या वृद्धि के कारण खाद्यान्नों की बढ़ती मांग को देखते हुए तथा कृषि विकास प्रक्रियाओं के परिणाम स्वरुप समतलीकरण एवं सिंचाई की सुनिश्चितता होने से कृषक खाद्यान्न उत्पादन विशेषतः गेहूँ व धान की खेती करने लगे, जिससे जीवन निर्वाहक कृषि के स्थान पर विशेषीकृत कृषि प्रवृत्ति आने से फसलों की संख्या क्रमशः कम होने से विकासखण्डों (36108 हेक्टेयर) की संख्या घटकर मात्र दो यथा धाता (W,G,P,Ja,S) तथा ऐराय (W,P,Ja,G) रह गयी, जिनकी अवस्थित बीहड़ीकृत क्षेत्रों (बरुना नदी एवं ससुरखदेरी नदी बेसिन) में पायी जाती है, जहाँ कृषि विकास की प्रतिबन्धित दशाएं पायी जाती है। यदि कृषकों को सरकारी तन्त्र से सहायता प्राप्त होती है, तो सम्भवतः इन विकासखण्डों में विशेषीकृत कृषि के स्तर में और भी सुधार होता है।

छः फसली साहचर्य प्रदेश

छः या अधिक फसल साहचर्य की स्थित उन क्षेत्रों या विकासखण्डों में पायी जाती है, जहाँ कृषि विकास की प्रतिबन्धित दशाएं पायी जाती हैं, जिससे कृषकों को मजबूर होकर जीवकोनिर्वाहक फसलों की कृषि स्थानिक भौगोलिक दशाओं के अनुरुप करनी पड़ती है। अध्ययन क्षेत्र में यमुना नदी के तटवर्ती बीहड़ीकृत क्षेत्रों में ऐसी ही स्थिति व्याप्त है। यदि अध्ययन क्षेत्र के फसल साहचर्य के क्षेत्रीय एवं कालिक परिवर्तन पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होता है कि जहाँ वर्ष 1990–91 में इस वर्ष के अन्तर्गत आने वाले विकासखण्डों (50439 हेक्टेयर) की संख्या दो यथा असोथर (W,Be,Wg,Ja,Ba,G), तथा खजुहा (W,Be,Ja,P,G,Ba), थी। वहीं वर्ष 2015–16 में बीहड़ीकृत प्रक्रिया की तीव्रता के कारण विकासखण्ड अमौली (नान नदी) के सम्मिलित हो जाने से विकासखण्डों (85906 हेक्टेयर) की संख्या बढ़कर तीन हो गयी यदि बीहड़ीकृत प्रक्रिया पर प्रतिबन्ध एवं सुधार की योजना न लागू किया गया तो नदी तटवर्ती क्षेत्रों में कृषि प्रतिबन्धित दशाओं के विकास के कारण कृषकों को मजबूर होकर जीविकोनिर्वाहक कृषि करनी पड़ेगी।

उपरोक्त विश्लेषणों से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में दो से छः फसल साहचर्य प्रारुप पाया जाता है। अध्ययन क्षेत्र में वर्षा की अनिश्चितता, सिंचाई साधनों की कमी तथा प्राचीन रुढ़िवादी कृषि पद्धति के फलस्वरुप फसलों में भिन्नता पायी जाती है, जिससे बहुसंख्य कृषक अपनी आवश्यकताओं के अनुरुप कुछ प्रमुख फसलों की खेती न करके एक से अधिक फसलों को उत्पादित करना पसन्द करते हैं। समतल मैदानी क्षेत्रों में जहाँ सघन जनसंख्या पायी जाती है, वहाँ खाद्यान्न उपादन करने हेतु फसलों की संख्या कम पायी जाती है वहीं कम वर्षा एवं कम उपजाऊ ऊबड़–खाबड़ क्षेत्रों में स्थानिक विशेषताओं के अनुरुप फसलों की संख्या अधिक हो जाती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि फसलों के निर्धारण में जहाँ एक तरफ प्राकृतिक कारक यथा धरातलीय बनावट व प्रवाह प्रणाली, मृदा प्रकार व उर्वरा शक्ति का स्तर, वर्षा की मात्रा आदि अपनी अहम भूमिका निभाते

हैं, वहीं सामाजिक–सांस्कृतिक कारकों यथा जनसंख्या, सिंचाई के साधनों की सघनता व सुलभता, परम्परायें, भोजन की आदतें, परिवहन सुविधाएं बाजार की समीपता, कृषि अवस्थापनात्मक तत्व आदि का भी स्पष्ट रुप से प्रभाव देखा जा सकता है।

वर्ष 1990–91 एवं उसके पूर्व फसलों की संख्या अधिक होने सें अध्ययन क्षेत्र के अधिकांश विकासखण्डों में फसल विविधीकरण का स्तर उच्च था। लेकिन कृषि अवस्थापनात्मक तत्वों के सतत् विकास, वितरण एवं अंगीकरण के फलस्वरुप कृषकों का ध्यान अधिक ऊर्जा एवं अधिक मुद्रा प्रदायिनी फसलों की कृषि के प्रति बढ़ने के कारण फसल सघनता में निरन्तर वृद्धि हुई है, साथ ही साथ खााद्यान्न फसलों विशेषतः गेहूँ व धान के उत्पादन के तरफ कृषकों का रुझान अद्यतन जारी है, जिससे विशेषीकरण का स्तर क्रमशः उच्च होता जा रहा है। अध्ययन क्षेत्र में उत्पादित फसलों में 71.17 प्रतिशत खाद्यान्न पदार्थ से सम्बन्धित फसलें होती है। इसका प्रमुख कारण अध्ययन क्षेत्र में गैर प्राथमिक व्यवसाय विशेषतः उद्योग धन्धों का अभाव तथा सघन जनसंख्या है। अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र समाजार्थिक विकास की दृष्टि से उपेक्षित रहा है, जिससे न तो यहाँ का औद्योगिक विकास ही हुआ है और न तो यहाँ कृषि सम्बन्धित विकास ही पर्याप्त मात्रा में हुआ है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में क्रमशः कृषि विकास प्रक्रियाओं के परिणाम स्वरुप कृषि अवथापनात्मक तत्वों का वितरण एवं अंगीकरण अधिक होने से फसल विविधता सूचकांक में क्रमशः वृद्धि हुई है। बहुसंख्य कृषक बाजार मांग एवं आवश्यकताओं के अनुरुप अधिक उत्पादन देने वाले फसल विशेष की कृषि करनें के प्रति झुकाव बढ़ने से अध्ययन क्षेत्र में कृषि विविधता के स्तर में क्रमशः गिरावट दर्ज किया गया। समतल मैदानी क्षेत्रों में जहाँ सघन जनसंख्या पायी जाती है, वहाँ खाद्यान्न उत्पादन करनें हेतु क्रमशः फसलों की संख्या कम पाये जाने से निम्न फसल विविधता पायी जाती है। निम्न उर्वरता व ऊबड़–खाबड़ क्षेत्रों में स्थानिक विशेषताओं के अनुरुप फसलों की संख्या अधिक होने से उच्च फसल विविधता पायी जाती है, क्योंकि फसल विविधता के निर्धारण में जहाँ एक तरफ प्राकृतिक कारकों यथा धरातलीय बनावट व प्रवाह प्रणाली, मृदा प्रकार व उर्वरा शक्ति का स्तर, वर्षा की मात्रा आदि अपनी अहम भूमिका निभाते हैं, वहीं सामाजार्थिक कारकों यथा जनसंख्या, सिंचाई साधनों की सघनता एवं सुलभता, परम्परायें, भोजन की आदतें, परिवहन सुविधाएं बाजार की समीपता, कृषि अवस्थापनात्मक तत्वों आदि का भी स्पष्ट रुप से प्रभाव देखा जा सकता है।

वर्ष 1990–91 एवं उसके पूर्व फसलों की संख्या अधिक होने से अध्ययन क्षेत्र के अधिकांश विकासखण्डों में फसल विविधीकरण का स्तर उच्च एवं मध्यम था। लेकिन कृषि विकासीय प्रक्रियाओं के परिणाम स्वरुप कृषि अवस्थापनात्मक तत्वों के वितरण एवं अंगीकरण के कारण कृषकों का ध्यान अधिक ऊर्जा एवं अधिक मुद्रा प्रदायिनी फसलों की कृषि के प्रति बढ़नें के कारण फसल विशेष (गेहूँ व धान) की कृषि करने से फसल विविधीकरण सूचकांक में क्रमशः वृद्धि हुई है, जिससे फसल विविधीकरण का स्तर निम्न होता जा रहा है। यदि भूमि सुधार एवं कृषि विकासीय प्रक्रियाएं एवं खाद्यान्न उत्पादन के प्रति कृषकों का झुकाव इसी तरह रहा तो फसल विविधीकरण के स्तर में क्रमशः गिरावट आता जायेगा, परिणाम स्वरुप कृषि पारिस्थितिकीय तन्त्र के स्तर में गिरावट यानी मृदा उत्पादकता में ह्रास होगा, जिससे कहीं पर कृषि उत्पादकता में स्थिरता आयेगी तो कहीं पर गिरावट। अतः अध्ययन क्षेत्र में सरकारी प्रयासों से आधुनिक कृषि विविधीकरण के स्तर में उत्तरोत्तर उन्नयन करने की आवश्यकता है।

मिश्रित फसलोत्पादन की संस्थिति

कृषक जब अपने खेतों में एक समय में एक से अधिक फसलों को मिश्रित रुप में बोते है तो उसे मिश्रित फसलों कहते है। सामान्यतः धरातलीय एवं मौसमी विविधता वाले क्षेत्रों में कृषक को अपने जीवकोनिर्वाहन हेतु बाध्य होकर मिश्रित फसलोंत्पादन करता है। मिश्रित फसलोंत्पादन की दो विधियाँ अपनायी जाती है। पहली विधि में एक ही ऋतु में एक साथ अनेक फसलें

उगायी जाती है जबकि दूसरी पद्धति में एक वर्ष में एक खेत में कई फसल अलग–अलग ऋतुओं में बोई जाती है। मिश्रित फसलोंत्पादन पद्धति उन क्षेत्रों में प्रचलित है जहाँ सिंचाई एवं अन्य तकनीकों का विकास नही हो पाया है, क्योंकि मिश्रित फसलोंत्पादन पद्धति का निर्णय कृषक दो कारणों यथा वर्षा की अनिश्चितता व मात्रा एवं न्यूनतम कृषि भूमि पर अधिकतम फसल उत्पादन की भावना से लेता है (*बी0 बी0 सिंह, 1979*)। एक इकाई क्षेत्र में एक ही ऋतु में मिश्रित फसलोत्पादन से निम्नलिखित लाभ होते हैं :

- प्रतिकूल जलवायु तथा कीट–व्याधियों से किसी एक फसल के क्षति ग्रस्त होने पर दूसरी फसल उसकी भरपायी कर देती है।
- विविध फसलों को उगाने से मृदा की उर्वराशक्ति कायम रखने के साथ–साथ कृषक को विभिन्न प्रकार के कृषि उत्पाद भी प्राप्त होते रहते हैं।
- मिश्रित फसलोत्पादन करने से उत्पादन लागत कम होने के साथ–साथ कृषक को बार–बार जुताई, निराई, गुड़ाई आदि से भी छुटकारा मिलती है।
- मिश्रित फसलोत्पादन से मृदा अपक्षालन एवं अपरदन में कमी आती हैं।
- मिश्रित फसलोत्पादन से मुख्य फसल की सुरक्षा हो जाती है जैसे गन्ना के चारों ओर चार–पाँच पंक्तियों में पटसन या सनई बोने से गन्ने की सुरक्षा होती है।

अध्ययन क्षेत्र में सामान्य रुप से धरातलीय विविधता पायी जाती है, जिससे हरित क्रान्ति के पूर्व अधिकांश कृषित क्षेत्रों में मिश्रित फसलोत्पादन पद्धति अधिक अपनायी जाती थी लेकिन हरित क्रान्ति के प्रभाव के कारण वर्तमान समय में मिश्रित फसलोत्पादन पद्धति क्रमशः कम होती जा रही है और इसका स्थान विशेषीकृत फसलोत्पादन लेता जा रहा है, जिसका विस्तृत विवरण प्रतिदर्श ग्रामों के सर्वेक्षण एवं विश्लेषण से स्पष्ट है।

सारणी : 3 प्रतिदर्श ग्रामों में मिश्रित फसलोत्पादन की स्थिति

उदाहण	1990–91	2015–16
1.	ज्वार+बाजरा+अरहर+उर्द+लोबिया	ज्वार+अरहर+बाजरा (अंसिचित क्षेत्र)
2.	ज्वार+बाजरा+अरहर+सांवा	ज्वार+अरहर (अंसिचित क्षेत्र)
3.	ज्वार+बाजरा+अरहर+उर्द	अरहर+मूगंफली
4.	ज्वार+सांवा+तिल	अरहर+शकरकन्द
5.	ज्वार+अरहर+मूगंफली	अरहर+उर्द+तिल
6.	ज्वार+बाजरा+अरहर+मूंग	मक्का+अरहर
7.	अरहर+मूगंफली+सनई	बाजरा+अरहर (अंसिचित क्षेत्र)
8.	अरहर+गन्ना	गेहूँ +सरसों
9.	अरहर+उर्द	गेहूँ +जौ+चना+मटर+सरसों (बेझड़)
10.	अरहर+मूंग	जौ+सरसों
11.	अरहर+मूगंफली	जौ+चना (अंसिचित क्षेत्र)
12.	अरहर+सब्जी	चना+सरसों

13.	अरहर+कोहड़ा+रामदाना	मसूर+अलसी
14.	मक्का+अरहर+उर्द	गन्ना+प्याज
15.	मक्का+अरहर+ककड़ी+खीरा	–
16.	मक्का+मिर्चा	–
17.	मक्का+अरहर+मूंग	–
18.	शकरकन्द+रामदाना+अरहर	–
19.	गेहूँ+जौ+सरसों+अलसी+मटर+केसारी	–
20.	गेहूँ +सरसों	–
21.	गेहूँ +जौ+चना+सरसों+अलसी	–
22.	गेहूँ +चना	–
23.	जौ+चना	–
24.	जौ+सरसों	–
25.	आलू+मूली	–
26.	आलू+सरसों	–
27.	आलू+धनिया	–
28.	आलू+पालक	
29.	आलू+मेथी+सोवा	

स्रोत : खसरा रिकार्ड, प्रतिदर्श ग्राम, जनपद फतेहपुर।

अध्ययन क्षेत्र में मिश्रित फसलोत्पादन पद्धति के अध्ययन हेतु अध्ययन क्षेत्र के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों से 5 प्रतिदर्श ग्रामों का यादृच्छिक विधि से चयन किया गया है (सारणी 3) प्रतिदर्श ग्रामों का क्षेत्रीय एवं कालिक विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि जहाँ वर्ष 1990–91 में दो से छः फसलों को एक साथ मिश्रित रुप में बोया जाता था। वहीं वर्ष 2015–16 में सिंचाई एवं अन्य कृषि तकनीकों के विकास के कारण अध्ययन क्षेत्र के अधिकांश विकासखण्डों में मिश्रित फसलोत्पादन की स्थिति में परिवर्तन होने से एकल फसल बोया जाता है। मिश्रित फसलोत्पादन केवल उन्ही क्षेत्रों में अभी भी है जहाँ धरातलीय विविधता अधिक है या सिंचाई साधनों की कमी है।

सिंचाई, उच्च उत्पादकता वाले बीज, रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशी दवायें, मशीनीकरण आदि के विकास व अंगीकरण के कारण मिश्रित फसलोत्पादन के स्थान पर विशेषीकृत फसलोत्पादन (एकल फसलोत्पादन) को क्रमशः बढ़ावा मिल रहा है, क्योंकि इन तकनीकों के कारण प्रकृति पर निर्भरता कम होने के साथ ही साथ ऐसी तकनीकी व्यवस्था से एकल फसलोत्पादन सरल एवं सुविधाजनक हो गया है। विशेषीकृत फसलोत्पादन में जुताई से लेकर मड़ाई तक के सभी कार्यों में कृषक मजदूरों व पशुओं के स्थान पर यन्त्रों एवं मशीनों का उपयोग बढ़ता जा रहा है। ऐसी स्थिति में मिश्रित कृषि करना कठिन सा होता जा रहा है, क्योंकि अलग–अलग समयों में पकने के कारण फसलो की कटाई मशीनों से नही की जा सकती कई फसलें ऐसी हैं जिसे साथ–साथ मड़ाई (थ्रेसर) करने से कुछ फसलों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है जैसे गेहूँ के साथ सरसों की मड़ाई करने से सरसों भूसे के साथ ही उड़ जाता है। सामान्यतः मिश्रित फसलोत्पादन लघु एवं सीमान्त कृषकों के लिए अधिक लाभदायक होता है, क्योंकि वे अपने सीमित भूमि से वर्ष में कई फसलों का उत्पादन प्राप्त कर लेता है, जो आज सम्भव नही है।

फसल चक्र

किसी निश्चित क्षेत्र में एक नियत फसलन ऋतु में फसलों का इस अनुक्रम में उगाया जाना है कि मृदा कि उर्वरा शक्ति कम से कम ह्रास हो इस प्रक्रिया को फसल चक्र अथवा फसलों का हेर–फेर कहा जाता है, जो संधृत कृषि विकास के लिए अतिआवश्यक है, क्योंकि इस प्रक्रिया से अवशोषित होने वाले तत्वों की आपूर्ति अगली फसल से होती रहती है। अर्थात उचित फसल चक्र अपनाने से (अनाज–दलहन–अनाज) मृदा पारिस्थितिकीय समृद्ध एवं दीर्घकाल तक उत्पादकता की दृष्टि से सक्षम बनी रहती है। लेकिन हरित क्रान्ति के बाद गंगा के मैदानी भागों में फसल चक्र पद्धति में अवरोध आया है और इसका स्थान विशेषीकृत (धान–गेहूँ) फसलोत्पादन ने ले लिया है। जो कृषिगत संधृतता की दृष्टि से उचित नही है। सामान्यतः फसल चक्र मौसमी एवं धरातलीय विविधता की दृष्टि से महत्वपूर्ण होती है, जिससे कृषको को अनेकानेक लाभ मिलता रहता है।

अध्ययन क्षेत्र में हरित क्रान्ति के पूर्व सामान्य रुप से धरातलीय एवं मौसमी विविधता के कारण फसल चक्र एक पारम्परिक प्रक्रिया थी लेकिन हरित क्रान्ति के प्रभाव के कारण वर्तमान समय में क्रमशः फसल चक्र अवरोधित हुआ है और उसका स्थान विशेषीकृत (धान–गेहूँ) ने ले लिया है। जिसका विस्तृत विवरण प्रतिदर्श ग्रामों के सर्वेक्षण एवं विश्लेषण से स्पष्ट होता है। अध्ययन क्षेत्र में फसलचक्र पद्धति के अध्ययन हेतु अध्ययन क्षेत्र के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों से व प्रतिदर्श ग्रामों का यादृच्छिक विधि से चयन किया गया है प्रतिदर्श ग्रामों का क्षेत्रीय एवं कालिक विश्लेषण करनें से स्पष्ट होता है कि जहाँ वर्ष 1990–91 में विभिन्न ऋतुओं के अनुसार फसलों का चयन उचित फसल चक्र पद्धति नही अपनायी गयी है। फसल चक्र केवल उन्ही क्षेत्रों में अभी भी अपनायी जाती है, जहाँ धरातलीय विविधता अधिक है या सिंचाई साधनों में कमी है।

सारणी : 4 प्रतिदर्श ग्रामों में फसल चक्र

उदाहरण	1990–91	2015–16
1	गन्ना–गन्ना पेड़ी–धान	गन्ना–धान
2	आलू–गेहूँ–चारा	धान–आलू–गेहूँ
3	मक्का–आलू–गेहूँ–टमाटर	धान–गेहूँ–चना
4	भिण्डी–गेहूँ	धान–चना
5	मूंगफली–सरसों	–
6	मूंगफली–मटर–गन्ना	–
7	धान–जौ–ज्वार–बाजरा	–
8	धान–मटर–चरी	–
9	ज्वार–बाजरा–धान	–
10	बाजरा–अरहर–गेहूँ	–

स्रोत : खसरा रिकार्ड, प्रतिदर्श ग्राम, जनपद फतेहपुर।

वर्तमान समय में खरीफ में धान रबी में गेहूँ ही मुख्य फसलें रह गयी है, जिससे कृषि पारिस्थितिकीय में अनेकानेक विसंगतियाँ उत्पन्न हो गयी हैं जो संधृत कृषि के लिए ठीक नही है।

संधृत फसलोत्पादन हेतु स्थानिक नियोजन

अतः आज कृषि क्षेत्र को फिर से बदलाव की आवश्यकता है। पारम्परिक एवं आधुनिक कृषि के समन्वय से आधुनिक फसल साहचर्य एवं कृषि विविधीकरण पद्धति को विकसित कर प्राप्त किया जा सकता है। यह कोई नई पद्धति नही है बस इसे नये ढ़ंग से अपनाने की आवश्यकता है। इस पद्धति के द्वारा आधुनिक कृषि (सम फसल पद्धति) से उत्पन्न हुई समस्याओं को कम करने के साथ–साथ संधृत कृषि की प्राप्ति भी हो सकती है। इस प्रविधि को अपनाकर बरानी तथा सिंचित दोनों क्षेत्रों में समुचित एवं सन्तुलित कृषि उत्पादकता प्राप्त किया जा सकता हैं। इसके अलावा फसल साहचर्य एवं फसल विविधीकरण को अपनाने से निम्नलिखित अन्य लाभ भी प्राप्त किये जा सकते हैं :

- फसल साहचर्य एवं फसल विविधीकरण अपनाकर एक साल में कई फसलें उत्पन्न की जा सकती है, जिससे किसानों को वर्ष पर्यन्त फसलोत्पादन एवं रोजगार प्राप्त होता है। परिणाम स्वरुप उसकी आमदनी कई गुना बढ़ जाती है।
- एक फसल से होने वाली क्षति को दूसरे फसल से पूरा किया जा सकता है।
- विभिन्न फसलों के उत्पादन से विविधता आती है, जिससे सन्तुलित भोजन प्राप्त होता है।
- फसल साहचर्य एवं फसल विविधता से वर्ष भर रोजगार उपलब्ध रहता है तथा युवा पीढ़ी को शहरों के पलायन से रोका जा सकता है।
- फसल साहचर्य एवं फसल विविधता बाजार की कीमतों के उतार–चढ़ाव को भी नियन्त्रित करता है।
- फसल साहचर्य एवं फसल विविधता से बदलते मौसम के बुरे प्रभावों से बचा जा सकता है।
- मात्रात्मक पहलू के साथ–साथ गुणात्मक रुप से भी फसल साहचर्य एवं फसल विविधीकरण उत्पाद अधिक उपयोगी है, क्योंकि निर्यातोन्मुखी फसलों का उत्पादन अधिक होता है जो कृषकों के वार्षिक आय को बढ़ाता है।
- फसल साहचर्य एवं फसल विविधता अपनाकर मृदा एवं जल जैसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक तत्व के गुणवत्ता को सन्तुलित किया जा सकता है।
- फसल साहचर्य एवं फसल विविधता अपनाने से खरपतवारों, कीटों तथा व्याधियों के प्रभावों से बचा जा सकता है।

इस प्रकार सन्तुलित खाद्यान्न, पशुओं के लिए चारा व ईधन की आपूर्ति के साथ–साथ मृदा उर्वरता व उत्पादकता बनाये रखने के लिए फसल साहचर्य एवं फसल विविधीकरण एक उत्तम विकल्प है। कृषिगत भूमि वर्ष में न्यूनतम अवधि तक खाली न रहे तथा वर्ष पर्यन्त कृषि श्रम का सम्यक् उपयोग हो परिणाम स्वरुप कृषक को अधिकतम आय प्राप्त हो सके। इस प्रकार कृषिगत विविधता द्वारा ही टिकाऊ ग्रामीण व कृषि विकास, ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी व श्रमअतिरेक को न्यूनतम किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

[1]. Ahmad, A. and M.F. Siddique (1967), "Crop Association Patterns in Luni Basin", The Geographer, Vol.14.

[2]. Aiyer, N. P. (1969), "Crop Region of Madhya Pradesh: A Study in Methodology Geographical Review of India, Vol. XXXI, No.1, pp.1-9.

[3]. Ali, Massood (2006), "Crop Diversification: Concept, Need and Approaches", Proceeding of ICAR Sponsored Summer School, Indian Institute of Pulses Research, Kanpur, pp. 1-12.

[4]. Araki Hitoshi and Chandel,R.S.(2013)India Introduction of New Commercial Crop into a Rural Village : Case of Horticultue Production in Dedaur Village , U.P., India, Geographical Review Of Japan , Series B ,The Association of Japanes Geographical Journal, Vol.86, No.2,pp.174-188.

[5]. Bhatia, S.S. (1969), "An Index of Crop Diversification", Professional Geographer Vol. 44, pp.3-4.

[6]. Chandel, R.S. (1989), "Agricultural Productivity of Konch Block: A Case Study", Rural Systems, Vol. VII, No. 3, pp. 193-205.

[7]. Chandel, R.S. (1991), "Agricultural Change in Bundelkhand Region", Star Distributors (Publication Division), Varanasi.

[8]. Chandel, R.S. and Dixit, K. K. (2004), "Rural Transformation and Sustainable Planning", Indian Research Journal of Social Science, Vol. 8, No. 1, pp. 39-48.

[9]. Chandel, R. S. and Araki Hitoshi (2014), An Assessment and Management of Cultivable Wastelands of Sustainable Agricultural Development: A Case Study of Raebareli,U. P, India, Journal of Contemporary India Studies :Space and Society, Hiroshima University, Japan,.4,pp. 01-14. Vol

[10]. Chandel, R.S. and Singh, V.R. (1992), "Problems and Prospect of Dry Agriculture in India : An Analytical Study" (Hindi), Geo-Science Journal, Vol. 6, pp.1-2.

[11]. Chauhan, V.S. (1971), "Crop Combination in the Jamuna-Hindon Tract", The Geographical Observer, Vol.7.

[12]. Coppock, J. T. (1964), "Crop Combination", An Agricultural Atlas of England and Wales, p. 101.

[13]. Dayal, E. (1967), "Crop Combination Regions: A Case Study of Punjab Plains", Netherland Journal of Economic and Social Geography.

[14]. Hussain, M. (1970), "Pattern of Crop Combination in U.P.", Geographical Review of India, Vol. 32, Pts. (3).

[15]. Nitya Nand (1972), "Crop Combination Regions in Rajasthan", Geographical Review of India, Vol.4.

[16]. Roy, B. K. (1967), "Crop Association and Changing Pattern of Crops in Gang-Ghaghara, Daob, East, Town. of India, National Geographer, Vol. 13, Pts. (4).

[17]. Shafi, M. (1984), “Agricultural Productivity and Regional Imbalances”, Concept Publications, New Delhi.
[18]. Sharma, T. C. (1972), “Pattern of Crop Landuse in Uttar Pradesh”, Deccon Geographer, Vol.10, Pts. (1).
[19]. Singh, A. P. (1986), “Crop Combination Regions in Samastipur District”, Vol. XXII, No.2, pp.50-62.
[20]. Singh, B.B. (1973), “Cropping Pattern of Baraut Block: A Temporal Variation”, Geographical Observer, Vol. 9, pp. 51-60.
[21]. Singh, V.R. and Chandel, R.S. (1991), “Changes in Crop Combination Regions in Bundelkhand Region: A Case Study”, Geographer, Vol.1, No.1, pp. 46-51.
[22]. Weaver, J.C. (1954), “Changing Pattern of Crop-Land use in the Middle West”, Economic Geography, Vol. 30, pp. 34-55.
[23]. Weaver, J. C. (1954), “Crop Combination Region in the Middle West”, Geographical Review, Vol. 44, pp. 175-200.